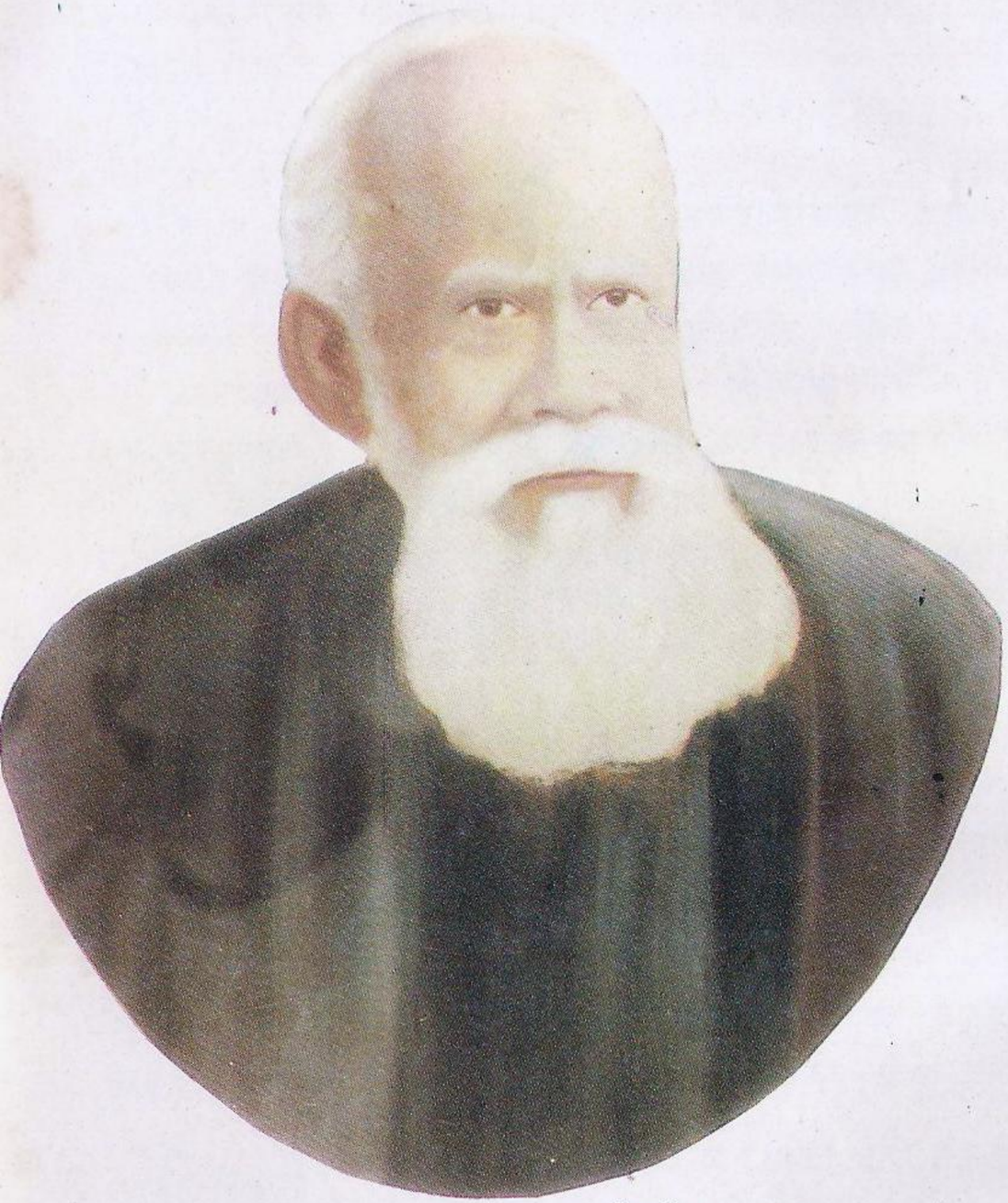

परम संत बाबा देवी साहब

छाया–श्री विनोद प्रसाद 'अजय' ग्रा०–बंसतपुर, पो०–पकड़ी सन्तपुर (सीतामढ़ी)

परम सन्त बाबा देवी साहब

परम सन्त बाबा देवी साहब महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के गुरु थे, जो मुरादाबाद के अताई मुहल्ले में रहा करते थे और वहीं से सत्संग के प्रचारार्थ इधर–उधर जाया करते थे। इनका जन्म सन् १८४७ ई० के मार्च महीने में हुआ था। इनके पिता मुंशी महेश्वरी लालजी हाथरस, जिला अलीगढ़ में कानूनगोई करते थे। मुंशी महेश्वरी लाल के पिता का नाम श्री नवनीत राय था। संयोगवश इनकी मुलाकात संत तुलसी साहब से हुई। वर्षा के कारण किले की खाई में पानी भर गया था, जहाँ तुलसी साहब रहते थे। मुंशी नवनीत राय अनुनय–विनय करके उन्हें अपने घर ले आये। मुंशीजी ने अपने यहाँ उनकी यथायोग्य सेवा की। वर्षा समाप्त होने पर तुलसी साहब किले की खाई में वापस आ गये। मुंशी नवनीत रायजी के पुत्र मुंशी महेश्वरी लालजी निःसंतान थे। सन्त तुलसी साहब के आशीर्वाद से मुंशी महेश्वरी लालजी को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जो सन्तमत के महान् प्रचारक बाबा देवी साहब के नाम से विख्यात हुए। जब इनकी उम्र चार वर्ष की हुई, तो तुलसी साहब ने इनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

बाबा देवी साहब जीवनपर्यन्त सन्तमत–सत्संग का प्रचार–प्रसार करते रहे, ये अखण्ड बाल–ब्रह्मचारी थे। राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य रायबहादुर शालिग्रामजी से इनका सम्पर्क था। १८८० ई० में ये मुरादाबाद आकर रहने लगे। सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का कथन है कि "बाबा देवी साहब ने न तो संत तुलसी साहब से दीक्षा ली और न उनके मत के किसी अन्य आचार्य से ही।" बाबा देवी साहब के शब्दयोग–सम्बन्धी विचार तुलसी साहब के शब्दयोग सम्बन्धी विचारों से मेल नहीं खाते। इन्होंने रामचरितमानस के बालकाण्ड के आदि भाग तथा उत्तरकाण्ड के अन्तिम भाग की टीका **'बाल का आदि और उत्तर का अन्त'** नाम से की थी। इन्होंने कोई नया मत नहीं चलाया। सन्त तुलसी साहब की भाँति ही ये सन्तमत का प्रचार करते थे। तुलसी साहब के बाद सन्तमत के प्रचारक राधास्वामी साहब थे, जिनका पितृदत्त नाम 'शिवदयाल' था। लेकिन इनके शरीरान्त के बाद उन्हीं के शिष्य रायबहादुर शालिग्राम साहब ने सन्तमत के बदले राधास्वामी मत का प्रचार किया। परिणाम यह हुआ कि सन्तमत वहाँ गौण हो गया। परन्तु बाबा देवी साहब सन्तमत के प्रचार को ही प्रश्रय देते रहे। उन्होंने भारत के प्रायः अधिकांश राज्यों– पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, कश्मीर, सिन्ध, हैदराबाद आदि स्थानों में °मण कर सन्तमत का प्रचार किया। १९ जनवरी,

१९१९ ई को मुरादाबाद में ये परिनिवृत्त हुए।

सद्गुरु बाबा देवी साहब ने **'घटरामायण'** की भूमिका में लिखा है– "जीव के उद्धार का मार्ग हर एक मनुष्य के अन्तर में मौजूद है। जबतक कि कोई जीव इस पर न चलेगा, धर्म और पंथ का असली फल मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता है। और न अपने और दूसरे के धर्म की असली जड़ और सच्चाई को जान सकता है और न उन ग्रन्थों और पोथियों के मतलब को कि जो उसके धर्म और पन्थ के हैं, समझ सकता है, चाहे कैसा भी पण्डित-मौलवी-पादरी हो जो ईश्वर या खुदा की बोली को समझ सकता हो। लेकिन पन्थ और धर्म उसके नजदीक या तो एक खेल या तमाशा है या दुनिया में दंगा और फसाद फैलाने का और भोले-भाले जीवों को धोखा देने का उम्दा सिद्धान्त है, क्योंकि हर मत की सच्चाई की जाँच जाँचने से मालूम हो सकती है और जाँचने का थर्मामीटर ईश्वर या खुदा ने हर जीव अमीर, गरीब, पंडित, मौलवी, पादरी, ज्ञानी, अज्ञानी, पापी, पुण्यात्मा और ब्राह्मण, सैयद से लेकर भंगी, चमार, कसाई तक के कुल के अन्तर में एक-सा रखा है; जबतक कि कोई मनुष्य इस पैमाने से कि खास उसके अन्तर में है, अपने आचार्य और अपने मत की सच्चाई और महिमा को नहीं जान सकता है, तो दूसरे के मत की सच्चाई और महिमा को क्योंकर जान सकता है।"

'बाल का आदि और उत्तर का अन्त' नामक पुस्तक की भूमिका में बाबा देवी साहब ने लिखा है : "साधु और सन्त वह कहलाते हैं कि जो दुनिया में सीधी और सलामत रबी की चाल को अख्त्यार करते हैं और सुरत अर्थात् ख्याल से ध्यान करने का उपदेश करते हैं, जिसे चाहे बैठकर करो, चाहे लेटकर करो, और न कोई मत-मतान्तर की बूझ होती है–वैदिकधर्मी,-मुसलमान, ईसाई कुछ भी बने रहो, परन्तु दुनिया में दु:ख-सुख भोगते हुए अन्तर में बिना अभ्यास किये एक दिन भी मत रहो।

इनका (साधु-सन्तों का) सबसे छोटा सिद्धान्त है, न तो अबतक वह संस्कृत, अरबी, फारसी, इबरानी में पाया जाता है और न उसने अभी तक किसी प्रेस या छापेखाने का मुँह देखा है। बल्कि उसकी नकल मनुष्यों के अन्दर पाई जाती है और वह चौदहे सफों[१] में लिखी हुई है। जबतक कि कोई अन्तर में अभ्यास न करे, तबतक न तो उसके अक्षर जान सकता है और न उसे पढ़ सकता है।

सन्तों का आम उपदेश यह है कि अन्दर या बाहर जो कुछ कि निगाह में आता

१. ये चौदह दर्जे घटरामायण की भूमिका में लिखे जा चुके हैं। यह पुस्तक सन् १९८६ ई० में प्रकाशित हुई है।

है, जहाँ तक कि रूप है, कुल मायावी और नाशवान् है, और इनके बाद एक ऐसी जगह है कि न तो वह कभी पैदा हुई है और न कभी नाश होती है। यही सत्य है। इसका नाश नहीं होता। इसका न कुछ रंग है, न कुछ रूप है और न कोई खास नाम है; लेकिन यह कुछ है, जो ख्याल और समझ में आता है, इसलिए वह भी नाम के शब्द से बोले जाने का अधिकारी है। जीव इसका अंश है, क्योंकि इसका भी नाश नहीं होता। इसको उसमें मिलाने को सत्संग अन्तरी कहते हैं और बाहर में उस जगह को कहते हैं, जहाँ परमार्थी बातचीत करने को मनुष्य जमा होते हैं। इनके दस्तूर और कायदे के मुआफिक जो लोग अभ्यास करते हैं, उनको साधु कहते हैं, और जिन्होंने कि अपने को उस लोक में पहुँचाया है, जहाँ कि वह सत्य है, सन्त कहलाते हैं। सन्तों में अभ्यास करने के बहुत गुर (युक्ति) नहीं हैं, सिर्फ दो हैं–एक दृष्टि, दूसरा शब्द।"

बाबा देवी साहब ने **'घटरामायण'** की भूमिका में अपने वचन में कहा है : (१) दृष्टि-साधन उसको कहते हैं कि जो आँख के साथ अभ्यास किया जाता है। इसके साधन करने के सैकड़ों गुर और अमल हैं कि जो भारतवर्ष और दूसरे मुल्कों में जारी हैं; लेकिन बाजे इनमें से ऐसे होते हैं कि जिनसे आँख के दोनों गोले टेढ़े पड़ जाते हैं। और बाजे ऐसे हैं कि जिनसे आँख जाती रहती है और बाजे कायदे ऐसे भी हैं कि जिनसे आँख की दोनों पुतलियों को, जिनमें से होकर रोशनी बाहर को निकलती है, खराब कर देते हैं, जिनसे फिर आँखों में धुँधला दिखाई पड़ता है और चाहे तमाम उमर हकीम, वैद्य, डॉक्टर इलाज करें, किसी तरह पुतलियाँ दुरुस्त नहीं होतीं। दृष्टि से अभ्यास करने का वह कायदा है, जिसको आँख और आँख के गोले से कुछ ताल्लुक नहीं है और न दृष्टि के मानी आँख और आँख के गोले के हैं, जिनसे कि वह नुकसान होते हैं, जो ऊपर बयान किये गये हैं।

दृष्टि, निगाह को कहते हैं कि जो मांस और खून की बनी हुई नहीं है। मनुष्य में यह निगाह ऐसी बड़ी ताकतवर चीज है कि जिसने बड़े-बड़े छिपे हुए साइंस और विद्याओं को निकालकर दुनिया में जाहिर किया है और सिद्धि वगैरह की असलियत और मसालों का पता जिससे कि वह हो सकती है, सिवाय इसके और किसी से नहीं लग सकता है। योग-विद्या के सीखने का दृष्टि पहला कायदा है और इसके अभ्यास करने का गुर ऐसा उम्दा है, जिससे स्थूल शरीर के किसी हिस्से को कुछ तकलीफ नहीं होती है और अभ्यासी इसके अभ्यास से उन निशानों को, जिसको कि ईश्वर या खुदा की आकाशी और आसमानी ग्रन्थों और किताबों में सबसे बड़ा बतलाया है, जल्द पाकर मालूम कर लेता है और फिर तमाम दुनिया के सिद्धान्त

और असूल अभ्यासी के रू-ब-रू हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं कि जो तमाम उमर पोथियों और ग्रन्थों के पढ़ने और सुनने से हासिल नहीं होती । लेकिन दृष्टि सिर्फ उस जगह पहुँच सकती है, जहाँ तक कि रूप है और जहाँ से कि आवागमन हो सकता है, आगे उसके नहीं जा सकती, जहाँ कि रूप और रेखा कुछ नहीं है और जहाँ से कि मोक्ष होता है । सन्तों के मत में सबसे बड़ा पदार्थ मोक्ष है और उस जगह तक दृष्टि नहीं जा सकती । इसलिए शब्द का दूसरा कायदा वहाँ पहुँचने को उपदेश किया गया है ।

इल्म-योग में सबसे बड़ा सिद्धान्त मोक्ष-पद पाने के लिए शब्द-मार्ग है, जो बहुत-से नामों से बोला जाता है । बाजे महात्मा इसी शब्द-मार्ग को धर्म और पन्थ की बुनियाद डालकर इसका उपदेश करते हैं । और बाजे लोग इसको साइंस और विद्या के नाम से कोई सुसाइटी वगैरह कायम करके उपदेश करते हैं, इसलिए धर्म और साइंस दोनों की यह जान है– न तो कोई धर्म और पन्थ बिना इस सिद्धान्त के चल सकता है और न कोई साइंस और विद्या, बिना इसके सहारे चल सकती है ।"

'बाल का आदि और उत्तर का अन्त' की भूमिका की निम्न पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं : "आवागमन से बचने को ही इसके (सन्तों के) मत का सबसे बड़ा फल है और इसी की बुनियाद पर इनके मत का उपदेश होता है ।

पृ० ५८-५९ : सन्तमत में दुनिया अनादि नहीं मानते हैं । यह कभी पैदा हुई है और इसका कभी नाश भी होगा । जब कभी नाश यानी प्रलय या कयामत होगी तो उस जगह तक का नाश होना माना है, जहाँ तक कि कोई शकल या रूप है । मतलब यह है कि जहाँ तक कोई लोक या कमल और ईश्वर या कमलों का कोई मालिक है–एक दिन सबका नाश होगा ।

पृ० ६३ : **अणिमादिक**–यह ईश्वरीय निशान है कि जो अभ्यास मार्ग में मालूम होते हैं । अन्तरी भेद जानने के लिए अभ्यास की जरूरत होती है और अभ्यास बिना जाने गुर अर्थात् जतन के किसी तरह से नहीं हो सकता है और यह दो तरह से मालूम होता है । अव्वल तो गुरु की दया से और दूसरे अगले जन्म की कमाई से अपने आप मालूम हो जाता है और उसका सामान भी खुद-ब-खुद वैसा ही बन जाता है, लेकिन दोनों के किस्म के लोगों को सत्संग की सख्त जरूरत होती है; क्योंकि उन भेदों को जिनको कि ये दोनों लोग अभ्यास-रीति से निकालते हैं, बिना सत्संग और गुरु के नहीं समझ सकते ।

अब तक यह नहीं मालूम हुआ कि सबसे पहला वह कौन मनुष्य था जिसने कि दुनिया में गुरु और गुर के असूल को कायम किया । अगर वह मनुष्य इस असूल को कायम न करता तो, न तो असली मालिक का पता लगता और न कोई इंतजाम मुनासिब तरह से होता । धर्म और मतों में न पीर-पैगम्बर, औलिया-औतार, देवता, ऋषि और मुनि होते और न दुनिया की बादशाहत और राज का आज के दिन नाम सुना जाता और जितनी सभा और सोसाइटी कि जो अब तक जारी हैं, पते को न होतीं और पुत्र को न कुछ पिता का खयाल होता और न स्त्री अपने पति की हुक्मबरदार होतीं ।

दुनिया की जितनी कारीगरी और सनद बी०ए०, एम०ए०, शास्त्री, हाफिज, मौलवी, सिविलियन-डॉक्टर, बढ़ई, चमार, कोली से लगाकर ईश्वर और उसका रास्ता कुल गुरु के मोहताज हैं । जिन लोगों के दीनी और धर्म के जलसों में गुरु को नहीं माना जाता है, वह लोग हमेशा दंगा-फसाद मचाते रहेंगे और जिन्दगी भर चक्कर में रहेंगे; क्योंकि न इसका कोई समझानेवाला है और न यह समझनेवाले हैं कि इन्होंने उस पवित्र और आकाशी सिद्धान्त को नहीं माना, जिसको कि सबसे पहले मनुष्य ने कायम किया था ।

पृ० ६८ : **सतगुर**– सत, सच्च को कहते हैं और गुर, अमल या भेद को कहते हैं, जिसके अभ्यास से कि जीव अनाम तक पहुँचता है । लेकिन यहाँ उन सतगुर से मतलब है कि जो निहायत प्यार से उस शब्द और प्रकाशरूपी सतगुर के भेद को बतलाते हैं । इनका दर्जा सबसे बड़ा है । जबतक जीव इनको अपना हकीम न बनावेगा और इनके वचन पर प्रतीत न करेगा, अपने मतलब को नहीं पा सकता है ।

सत्संग बाहरी और अन्तरी–सत्संग बाहरी उसको कहते हैं, जिसमें कि अन्तरी भेद का सतगुरु उपदेश करते हों और सत्संग अन्तरी उसको कहते हैं, जिसमें कि जीव, ब्रह्म, पारब्रह्म, अनाम वगैरह कुल का भेद मालूम हो ।

पृ० ६९ : **अधिकारी**–जो लोग कि दुनिया के कामों में हर वक्त लगे रहते हैं और एक-दो घण्टे की भी फुर्सत नहीं निकाल सकते, वे अन्तर-भजन के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि अगर उनको अन्तरी-भेद मालूम भी हो गया तो उनके किस काम का है ।

सद्गुरु बाबा देवी साहब के परिनिर्वाणकालिक अन्तिम वचन जबकि सत्संगियों ने उनसे साग्रह निवेदन किया था, "आप तो चले जा रहे हैं, हमलोगों को कुछ उपदेश देने की कृपा की जाय ।" इसपर उन्होंने यह कहने की कृपा की थी, **"दुनिया वहम है, अभ्यास करो ।"** □

(वेल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित आपकी जीवनी तथा 'सत्संगयोग' से उद्धृत– ले०)